Introduction

प्र ा क्क थ न

साहित्य मानव-जगत का सजीव चित्रण करनेवाली वह सशक्त कला है जो मानव-स्वप्नों और कल्पनाओं को भी एक रूप प्रदान करती है । पुनरूत्थानोत्तर औद्योगिक क्रांति से विकसित पूजीवादी व्यवस्थाने जीवन की जटिलताको जब अनेक गुना बढ़ा दिया, तब मानव-जीवन एवं समाज जीवन की जटिलताको यथार्थ एवं समग्र रूप में सम्प्रेषित करने के लिए उपन्यास एक उचित संवाहक एवं सशक्त लोकप्रिय विधा के रूपमें प्रतिष्ठित हुआ । तब से लेकर अब तक निरंतर विकसित एवं संवर्द्धित होता रहा है ।

उपन्यास इस नये युगकी नयी वास्तविकता एवं उसके अन्तर्विरोधों को प्रकट करने में अन्य काव्यरूपों की तुलना में विशेष सफल रहा है । इसलिए उपन्यास अधिक प्रचलित और लोकप्रिय हुआ है । यह एक ऐसी कला है, जो मानव को उसकी संपूर्णता के साथ ग्रहण करते हुए उसकी अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने की चेष्टा करती है । कदाचित इसीलिए राल्फ फाक्स महोदयने उपन्यास को आधुनिक युगका महाकाव्य कहा है । वास्तव में उपन्यास का काम उस नये मानवकी समस्याओं को प्रस्तुत करना है, जो आधुनिक सभ्यता के साथ उत्पन्न हुई हैं । दूसरे शब्दों में उपन्यास में हमारे समसामयिक जीवन की अभिव्यक्ति, मानवीय मूल्यों, समस्याओं एवं विश्लेषणों के रूप में हुई है । यही कारण है कि विधा को हम अपने जीवन के अधिक सन्निकट एवं संवेद्य रूप में पाते हैं ।

इस नयी औपन्यासिक विद्या को रूपायित करते हुए अनेक पाश्चात्य उपन्यासकारों ने जीवन की जटिलताओं को परखा है । इसमें वाल्टर

स्काट, एच• जी• वेल्स, किपलिंग, जेम्सजायस, जैसे अंग्रेजी उपन्यासकार एलेकजान्डर डयूमा, बालजाक, रोम्यांरोला जैसे फ्रेंच उपन्यासकार, टाल्सटाय, गोर्की, तुर्गनिव जैसे रूसी उपन्यासकार और हेमिंग्वे, फाकनर जैसे अमरीकी उपन्यासकार हुए हैं जो विश्व विख्यात तत्वचिंतक एवं मनीषी साहित्यकार हैं । भारतीय साहित्य में प्रेमचद, जैनेन्द्र, अज्ञेय {हिन्दी} रवीन्द्रनाथ ठाकुर, शरदबाबू, ताराशंकर बन्दोपाध्याय {बंगला} हरिनारायण आप्टे, वि•स• खांडेकर । {मराठी} श्री कारन्थ एवं श्री निवासन {कन्नड} गोवर्धनराम त्रिपाठी, कनैयालाल मुनशी, {गुजराती} प्रभृति उपन्यासकार अपने उपन्यासों मे जीवन के गहनतम सत्यों को शाश्वत एवं सांप्रतिक जीवन मूल्यों से संदर्भित करने में सफल हुए हैं ।

विश्व की श्रेष्ठतम रचनाओं को दिये जानेवाले साहित्य के नोबेल पुरस्कार अधिकांशत: उपन्यासकारों को ही मिले हैं । उपन्यास मूलत: पश्चिम की देन है । वहाँ उसका उद्भव हुआ और फिर धीरे धीरे वह, विश्व साहित्यमें फैल गया । हमारे देशमें उसका प्रारंभ उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से होता है । सर्व प्रथम टेकचंद ठाकुर कृत बंगला उपन्यास "आलालेर घरेर दुलाल" सन् 1857 में प्राप्त होता है । उसी वर्ष बाबा पदमनजी कृत मराठी उपन्यास "यमुना पर्यटन" मिलता है । हिन्दीका प्रथम उपन्यास "भाग्यवती" {पंडित श्रद्धाराम फल्लोरी} सन् 1877 में उपलब्ध होता है । यह एक सुखद संयोग हैं कि हिन्दी का प्रथम उपन्यास एक आधुनिक चेतना {स्त्री-शिक्षा से युक्त समस्या} को लेकर चला है । तबसे लेकर अब तक अनेक औपन्यासिकों ने समाज के प्राण प्रश्नों को अपने

उपन्यासों में कलागत संयम के साथ उकेरा है । हमारा देश गाँवों में बसा है अत: अधिकांशत: उपन्यासों में ग्रामीण समस्याओंको लिया गया है । परंतु इधर औद्योगिक क्रांति एवं शिक्षा के प्रचार-प्रसार से उद्भूत नगरीकरण की प्रक्रिया के कारण अधिकाधिक लोग नगरों में आने लगे हैं । परिणामत: कस्बे नगर, और नगर महानगरों की शक्ल धारण करने जा रहे हैं । नगर और महानगरों की ओर बढ़ते हुए इस मानव-प्रवाह के कारण नगरीय जीवन की समस्याएँ भी संगीन होती जा रही हैं ।

प्रस्तुत प्रबन्धमें सन् 1960 से 1980 तक के नगरीय जीवन की समस्याओंका आकलन करनेवाले उपन्यासों को लिया गया है । इन उपन्यासों में इस कालमें देश के नगरीयजन जीवनमें उभरनेवाली सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक घटनाओं, विपत्तियों, तनावों-दबावों तथा जीवन की टकराहटों की घटनाओं को उभारा गया है । भ्रष्टाचार, विघटन, टूटते-बदलते जीवन मूल्यों, एवं संबंधों में आजका मनुष्य दु:खरूपी समुद्रमें डूब गया है । वह आने वाले नये कलकी प्रतीक्षा कर रहा है । परतु यह प्रतीक्षा की दौड़ एक मृग मरीचिका बनकर रह जाती है ।

जीवन की जटिलता एवं पश्चिमी-सभ्यता के प्रचार-प्रसार ने यौन जीवन को अधिक उन्मुक्त बनाया है । इधर के स्वातंत्र्योत्तर विशेषत: साठोत्तर कथा-साहित्य में यह यौन-मुक्तता अधिक खुलकर आयी है । सेक्स के खुले प्रसंगों की अवतारणा, संभोग और उसके उपादानों का अनावृत्त चित्रण भी बढ़ गया है । इस परिवेश ने नारी, अत: दाम्पत्यको जोड़ने की अपेक्षा तोड़ा ही अधिक है ।

प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य प्रतिपाद्य हिन्दी के नगरीय जीवन के उपन्यासों में मानव जीवन की समस्याओं का निरूपण करना है । संक्षेप में प्रस्तुत अध्ययन की यही सीमा है । नगरीय परिवेश के उपन्यासों में हमें जीवन के प्रमुखत: तीन स्तर मिलते हैं -- उच्चवर्गीय, मध्यवर्गीय, एवं निम्नवर्गीय । उच्च-वर्ग में स्वातंत्र्योत्तर नव-धनिक वर्ग भी शामिल है जिसमें संस्कारों का बिलकुल छेद उड़ गया है । परम्परागत उच्च वर्ग अपने अभिजात संस्कारों के बावजूद भीतर से खोखला हो रहा है । इस तथाकथित उच्चवर्ग की भीतरी अभद्रता, विद्रूपता जीवन के एक और नरक का संकेत देती है । निम्न वर्ग को तथाकथित जीवन-मूल्यों से कोई लेना-देना नही है । उनका जीवन उनकी अपनी वैतरणी है और मध्य-वर्ग शिक्षा और संस्कार, आर्थिक अभाव और प्रदर्शन-प्रियता, राजकीय भ्रष्टाचार एवं नैतिक शोषण के दो पाटों के बीच बुरी तरह पिसा जा रहा है । नगरीय जीवन की इन जटिलताओं को इन उपन्यासों में रूपायित किया गया है । डॉ॰ इन्द्रनाथ मदान, डॉ॰ अतुलवीर, अरोरा, डॉ॰ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, डॉ॰ धनराज मानधाने, डॉ॰ रामदरश मिश्र, डॉ॰ त्रिभुवन सिंह, भीष्म साहनी, राजेन्द्र यादव, डॉ॰ रमेश कुंतल मेघ, डॉ॰ शिवकुमार मिश्र प्रभृति उपन्यास-साहित्य के आलोचकों ने इस त्रिस्तरीय जीवन - परिवेश को अपने अध्ययनों में उकेरा है । प्रस्तुत अध्ययन अपनी पूर्व-परम्परा में यत्किंचित योगदान देने का एक नम्र प्रयास है ।

अध्ययन की सुविधा के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबंध को सात अध्यायों में विभाजित किया गया है । प्रथम अध्यायमें औपन्यासिक रूपबन्धकी संक्षिप्त

चर्चा करते हुए एक नयी विधा के रूप में उपन्यास को स्थापित किया गया है । इसमें उपन्यास की यथार्थ धर्मिता को लक्षित करते हुए मानव-जीवनकी समस्याओं से उसकी घनिष्ठता को रेखांकित किया गया है । समस्याएँ युग-सापेक्ष होती हैं, फलत: आलोच्य काल ‍‌§सन् 1960-80§ की युग चेतना के सामाजिक राजनीतिक, धार्मिक प्रभृति आयामों को उद्घाटित किया गया है । इसी अध्याय में औद्योगीकरण एवं उसके सामाजिक प्रभावों को लक्षित करते हुए नगरीकरण की प्रक्रिया और उसके परिणामों की विस्तृत चर्चा भी की गई है ।

पहले निर्दिष्ट किया जा चुका है कि औद्योगिक क्रांति से निष्पन्न शहरीकरण की प्रक्रिया तीव्र से तीव्रतम होती जाती है । परिणामत: नगरीय जीवन के जीवन-मूल्यों में शनै: शनै: बदलाव आता है । जीवन मूल्यों के इस बदलाव, पश्चिमी शिक्षा के प्रचार-प्रसार, वैज्ञानिक चिंतन, स्त्री-पुरुष की परिवर्तित सामाजिक स्थितियाँ, नारी-शोषण के नये कोण प्रभृति से नगरीय जीवन पीड़ा, दु:ख, संत्रास, घुटन, एकाकीपन आदि के अहसास से भर जाता है जिसके परिणामस्वरूप अनेक समस्याएँ खड़ी होती हैं । यह समस्याएँ आर्थिक सामाजिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक एवं राजनीतिक रूपमें मिलती हैं । समस्याओं के इन नाना पक्षों पर इस अध्याय में संक्षेप में विचार हुआ है ।

दूसरे अध्याय में नगरीय जीवन पर आधारित सातवें एवं आठवें दशक के 1960 से 1980 तक उपन्यासों की विषय वस्तुका संक्षिप्त विवेचन उनमें निरूपित मानव-जीवन की समस्याओं के विशिष्ट संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है । प्रारंभ में नगरीय परिवेशको स्पष्ट करते हुए उपन्यासों में

समस्या - निरूपण की सुदीर्घ परम्परा का संक्षिप्त परिचय दिया गया है । अध्याय में सन् 1960 से 1980 तक के नगरीय परिवेश के उपन्यासों की चर्चा होने जा रही है, अत: प्रारंभ में सन् 1960 तक के उपन्यासों में निरूपित समस्याओं को संक्षिप में प्रस्तुत किया गया है । तत् पश्चात् "सारा आकाश", "अजय की डायरी", अन्धेरे बन्द कमरे", "अपने अपने अजनबी", "पचपन खंभे लाल दीवारें", "शहर में घूमता आईना", "कथा-सूर्य की नयी यात्रा", "रेखा", "वे दिन", "अठारह सूरज के पौधे", "मछली मरी हुई", "रूकोगी नहीं राधिका?", "एक पति के नोट्स", "किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई", "डाक बंगला", "आपका बण्टी" "टेराकोटा", "सूरजमुखी अँधेरे के", "तमस", "बेघर", "यह भी नहीं", "अपने लोग", कोहरे", कोरजा", "कुमारिकाएँ", "चित्त कोबरा", "कुरु कुरु स्वाहा" जैसे लगभग 80 उपन्यासों की वस्तु चेतनाको नगरीय-परिवेश की नाना समस्याओं के सन्दर्भ में विश्लेषित किया गया है । इन उपन्यासों में नयी मानसिकता का तनाव, तीव्र काम कुण्ठा, आधुनिकता तथा परिवेशगत जटिलताओं का चित्रण किया गया है । इन उपन्यासों में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों का चित्रण नये दृष्टिकोण से हुआ है । नगरीय परिवेश में बढ़ती वर्ग-संघर्ष की भूमिका को भी रेखांकित किया गया है । कहीं कहीं स्वच्छंद यौन वृत्ति के कारण नारी भटक गई है । नारी-भटकन की इस तीव्र अनुभूति को कई उपन्यासों में उभारा गया है ।

"सूरज मुखी" अन्धेरे के" जैसे उपन्यास में मानवीय मनके अंधेरों और सन्नाटों, के बीच आधुनिक नारी की विडंबना का चित्रण कलागत निर्ममता के साथ हुआ है । नैतिक आदर्शों के प्रति मानसिक विद्रोह की भावनाको

उसमें रेखांकित किया गया है । अज्ञात मन मे छिपी स्त्री की नारीगत भावना को दिवाकर द्वारा मुक्ति मिलती है परंतु उसकी मुक्ति के उपाय तो फिर भी अनपेक्षित ही रह जाते हैं । सचमुच इन दो दशकों के नगरीय जीवन के उपन्यास और उसके पात्र व्यर्थता और विवशता से धिरे हुए हैं । यहाँ नियति चक्र का विवेचन न करके मनुष्य ने ही मनुष्य की यही हालत बना दी है उसका विवेचन हुआ है । उच्चवर्गीय समाजमें वेश्या वृत्तिका आधार आर्थिक विवशता न होकर काम की अभुक्ति से उत्पन्न सेक्स-विकृति है । यह तथा ऐसी अनेक मनोवैज्ञानिक समस्याओं का निरूपण इन उपन्यासो में हुआ है ।

तीसरे अध्याय में नगरीय परिवेश के उपन्यासों में घटित होनेवाली सामाजिक एवं पारिवारिक समस्याओं का संक्षेप में विवेचन किया है । व्यक्तिवादी चेतना और पारिवारिक विघटन, प्रेम-विषयक विभावनाओं में परिवर्तन, स्त्री-पुरूष सम्बन्धों में बदलाव और विघटन की स्थिति, नैतिक मूल्यों का पतन, जातिवाद की समस्या, कौमी समस्या, मध्यवर्गीय प्रदर्शन प्रियता, उच्चवर्गीय खोखलापन, शिक्षित अविवाहित महिलाओं की समस्या, खण्डित दाम्पत्यजीवन की समस्या, बच्चों की त्रिशंकु-सी अवस्था, दहेज की समस्या, स्त्रियों पर होनेवाले अत्याचारों की समस्या, युवा आक्रोश आदि समस्याओंका विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है । यह सामाजिक समस्याएँ भी तीनों वर्ग की अलग-अलग है। उच्च वर्ग की जो समस्याएँ है वह निम्न-वर्गकी नहीं हैं और जो निम्न-वर्गकी है वह मध्य वर्गकी नहीं है । अत: वर्ग भेद के आधार पर सामाजिक समस्याओ को विश्लेषित करने का प्रयत्न यहाँ रहा है ।

चौथे अध्याय में आलोच्यकाल के नगरीय उपन्यासों में आर्थिक समस्याओं का संक्षेप में विवेचन किया गया है । औद्योगीकरण से गाँव टूटते गये और नगर विस्तृत होते गये रोजी-रोटी का प्रश्न मध्यमवर्ग और निम्न वर्ग के लिए एक समस्या बन गया । गरीबी तथा बढ़ते हुए भौतिकवादी चिंतन ने मध्यमवर्गको येन-केन प्रकारेण संपत्ति-अर्जन की दिशाओं की ओर प्रेरित किया, जिसके कारण रिश्वत एवं भ्रष्टाचार का बाज़ार गर्म हो गया । आवास की समस्याअ भी उसके जुड़ी हुई है । बढ़ती हुई महंगाई ने स्त्री-पुरुष सभी को नौकरी करने पर विवश कर दिया है, जिसके कारण बेरोजगारी की समस्या और भी विकट हो गई है । इसी आर्थिक विवशता के कारण परिवार का आर्थिक उत्तर दायित्व कई बार आधुनिक शिक्षित नारी के कंधों पर आ जाता है परिणामत: सुषमा ("पचपन खंभे लाल दीवारें") और मीति (टेरा कोटा) जैसी नारियों को मानसिक घुटन के अनुभवों से गुज़रना पड़ता है । नगरों में स्लम की जिन्दगी की आर्थिक परेशानियाँ तो और भी विकट है, जिसे "मुरदाघर" जैसे उपन्यास में रूपायित किया गया है ।

औद्योगीकरण, आधुनिक शिक्षा, पश्चिमी सभ्यता का प्रचार, भौतिकवादी आस्थाहीन चिंतन, अस्तित्ववाद से प्रेरित अनीश्वरवादी अवधारणा आदि के कारण आधुनिक जीवन अधिक जटिल होता गया है । फलत: मानसिक गुत्थियाँ और विकृतियाँ और भी बढ़ गई हैं । यह मानसिक जटिलता गाँव, कस्बा, नगर और महानगर में क्रमश: अधिक विकसित होती हुई दृष्टिगोचर होती है । अत: यह स्वाभाविक है कि मनोवैज्ञानिक समस्याओं का निरूपण नगरीय परिवेश के उपन्यासों में बनिस्बत ग्रामभित्तीय

उपन्यासों के अधिक हुआ हो "पाँचवे अध्याय में इन्हीं मनोवैज्ञानिक समस्याओं को विश्लेषित करनेका प्रयत्न रहा है जिनमें स्त्री-पुरुष की अहमन्यता, लघुता ग्रंथि, इडिपस और इलेक्ट्रा कोम्पलेक्स, बद्धत्व ग्रंथि, यौन-विकृतियाँ आदि प्रमुख हैं ।

छठे अध्याय में इस युगकी राजनीतिक, साहित्यिक और शैक्षणिक स्थितियों से समाज में उठनेवाली समस्याओंका निरूपण किया गया है । गंदी राजनीति के बढ़ते हुए प्रभाव ने मानव-जीवन को विशृंखलित किया है । राजनीति का यह प्रभाव नगरों के मानव-जीवन को कैसे लीलता गया है यह भी यहाँ विश्लेषित हुआ है । राजनीतिक मूल्यों में बदलाव आने से सामाजिक और नैतिक जीवन मूल्यों में भी बदलाव आता गया और नगरीय जीवनमें अनेक समस्याएँ उठीं । साहित्यिक एवं शैक्षणिक क्षेत्रों की विसंगतियों ने मानव-जीवन की समस्याओं को गहराने में विशिष्ट भूमिका निभायी है । अत: इन सबका विस्तृत विवेचन करने का प्रयास इस अध्याय में हुआ है ।

अंतिम अध्याय उपसंहार का है जिसमें 1960 से 1980 तक के आधुनिक नगरीय जीवन के उपन्यासों में निरूपित मानव जीवनकी समस्याओं का समुचित मूल्यांकन करने का प्रयास हुआ है । अध्याय में उपन्यास साहित्य एवं उसके महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए इस विषय के अध्ययन की अन्य दिशाओं को संकेतित किया गया है । प्रस्तुत प्रबंध में आधुनिक नगरीय जीवन के उपन्यासों के संदर्भ में उठायी गई बातें विस्तृत अध्ययन की दिशाओं को खोल ने में तथा ज्ञान राशि के संचयन को किंचित योग देने में सफल हुई तो मैं अपने परिश्रम को सार्थक समझूगा ।

मेरा यह लघु प्रयास अनुसंधान की दिशाको एक कदम भी बढ़ा पाया आलोचकों, पाठकों व अनुसंधित्सुओं को इससे किंचित भी योग मिला तो मैं स्वयं को कृतार्थ समझूंगा । इस प्रबंध में केवल नगरीय परिवेश के उपन्यासों को ही लिया गया है । इस संदर्भ में जिन प्रश्नों को उठाया गया है उनको यथा संभव स्पष्ट करने का मेरा प्रयत्न रहा है ।

हिन्दी उपन्यासों की प्रकाशन तिथियों को निश्चित कर उनकी तालिका बनाने में अनेक असुविधाओं एवं संकटों का सामना करना पड़ा है । इस दिशामें विभिन्न ग्रंथों, पत्रिकाओं, लेखकों तथा प्रकाशकों से उनके बहुमूल्य निर्देश प्राप्त हुए हैं । उनका मैं अतीव कृतज्ञ हूँ, और उन सर्जकों, समीक्षकों, एवं अन्य विद्वज्जनों के प्रति अत्यंत आभारी हूँ, जिनकी समीक्षाओं, कृतियों एवं अन्य मौलिक विचार विमर्शों की उपलब्धियों की सहायता मुझे प्रस्तुत प्रबन्ध में मिली है ।

इस शोध-प्रबंध को यह रूप प्रदान करने में मेरे निर्देशक डॉ॰ पारूकान्त देसाई से मुझे समय-समय पर अनेक निर्देश मिलते रहे हैं । उनके बहुमूल्य निर्देशों के अभाव में यह कार्य मेरे लिये अत्यंत दुष्कर होता । उन्होंने मुझे शोध-प्रणाली से परिचित करा कर जो मूल्यवान निर्देश दिये हैं उसके फलस्वरूप यह प्रबंध इस रूपमें प्रस्तुत हो सका है । उनके व्यक्तित्व, संस्कार, सद्भावनापूर्ण शिष्य वत्सलता, एवं अनुग्रह से मेरा जीवन"पथ हमेंशा आलोकित होता रहा है । लाख कृतज्ञता ज्ञापित करने पर भी उनके ऋण से मैं उऋण नहीं हो सकता ।

मेरे साहित्यिक संस्कारों को बनाने में तथा विश्व विद्यालयीन शिक्षा को सुलभ कराने में जिन महानुभावों का योगदान मुझे मिला है उनमें

आधुनिकों में शीर्षस्थ ऐसे गुजराती के भूतपूर्व विभागाध्यक्ष और मेरे गुरुवर डॉ॰ सुरेश जोशीजी तथा गुजराती विभाग के प्राध्यापक डॉ॰ मफत ओझाजी, जैसे मुख्य हैं । अत: उनके प्रति मैं हदय से आभारी हूँ ।

प्रस्तुत प्रबंध की अनेक समस्याओं को सुलझाने में विभागाध्यक्ष एवं मेरे गुरुवर डॉ॰ दयाशंकर शुक्लजी, एवं भूतपूर्व हिन्दी के विभागाध्यक्ष एवं प्रोफेसर डॉ॰ मदन गोपाल गुप्तजी, डॉ॰ आर॰डी॰ पाठक, डॉ॰ के॰एम॰ शाह, डॉ॰ बंसीधर शर्मा, डॉ॰ प्रेमलता बाफना, डॉ॰ वामन वी॰ अहिरे आदि के बहुमूल्य परामर्शों से मुझे विशेष सहायता प्राप्त हुई है । उनका सदैव मैं आभारी हूँ ।

हिन्दी, गुजराती, अंग्रेजी के जिन संदर्भ ग्रंथों से मैं ने सहायता ली है उनके विद्वान लेखकों के पति कृतज्ञता ज्ञापित करना मैं अपना परम धर्म समझता हूँ । मेरी प्रिय सखी, स्व॰ कुसुम पटेल के आगे मैं हमेशा नतमस्तक हूँ जिसका स्नेह मुझे हमेशा कर्म – पथ की ओर प्रेरित करता रहा । यहाँ उसका स्मरण स्वाभाविक होगा ।

मेरे परम मित्र डॉ॰ महिपतसिंह राउलजी, डॉ॰ छत्र सिंहजी, डॉ॰ चन्द्रकान्त लिम्बासिया, श्री नरसिंहगिर गोस्वामी, श्री रमेशभाई पटेल, श्री अनोपसिंहजी परमार आदि के समय-समय पर अपने बहुमूल्य सुझावों से मुझे प्रोत्साहित करते रहे है । उनका मै हदय से आभारी हूँ ।

इस समूची – प्रक्रिया में मुझे सदैव मेरी धर्मपत्नी शारदा पटेल से प्रेरणा व सहयोग मिलता रहा है । जिसका मैं सदैव अनुग्रहीत रहूँगा ।

वास्तव में इस भगीरथ कार्य के सम्पन्न होने में मेरे पूज्य पिताजी के आर्शीवाद और मेरे भाइयोंका स्नेहपूर्ण सहयोग प्रेरणा के गीत रहे हैं । जिनसे मैं कभी उत्रृण नहीं हो सकूँगा । अंत में जिन महानुभावों तथा मित्रों से प्रत्यक्ष या परोक्ष सहयोग मुझे मिला है उन सबके प्रति मैं आभार प्रकट करता हूँ ॥

अन्तत: यह शोध-प्रबंध विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत है । अनुसंधित्सु अपनी मयार्दाओं से परिचित है और अत्यंत विनम्र भावसे निवेदन करता है कि विद्वज्जन इस शोध-प्रबंध की त्रुटियों पर न जाकर यदि उसमें कुछ ग्राहय करने लायक हो ता उसे ग्रहण करने की कृपा करें ।

अनुसंधित्सु,

30 जुलाई, 1987

(चन्द्रकान्त एस. पटेल)
आचार्य, श्री ब्राइट स्टार विद्यालय,
रवालिया, जि. पंचमहाल :389350:
(गुजरात)